
इकाई 5 आत्मकथा : जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि)

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 उद्देश्य
- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 आत्मकथा : 'जूठन' का वाचन
- 5.3 सार
- 5.4 अंतर्वस्तु
- 5.5 चरित्र-विश्लेषण
- 5.6 परिवेश
- 5.7 संरचना-शिल्प
 - 5.7.1 भाषा
 - 5.7.2 शैली
- 5.8 शीर्षक
- 5.9 प्रतिपाद्य
- 5.10 सारांश
- 5.11 शब्दावली
- 5.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 5.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपका परिचय महादेवी वर्मा के एक निबंध के माध्यम से हिंदू समाज में भारतीय नारी के यातनामय जीवन के अभिशाप से कराया गया है। इस इकाई में आप हिंदू समाज के एक जागरूक दलित साहित्यकार की आत्मकथा 'जूठन' के माध्यम से अछूत जातियों के उत्पीड़न और उनके साथ होने वाले अमानुषिक अत्याचारों का अध्ययन करने जा रहे हैं। वस्तुतः आज नारी-मुक्ति और दलित-मुक्ति के आंदोलन दोनों ही साहित्य के केंद्र में आ चुके हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आत्मकथा नामक गद्य विधा की विशेषताएँ समझ सकेंगे;
- आत्मकथाकार के जीवन के यातनापूर्ण प्रसंगों से दलित जीवन की वास्तविक पीड़ा को समझ और व्यक्त कर सकेंगे;
- आत्मकथा में व्यक्त लेखकीय चरित्र और व्यक्तित्व को समझ सकेंगे;
- आत्मकथा के संरचना-शिल्प की विशेषताओं की पूरी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिवेश के एक महत्वपूर्ण अभिशाप – अस्पृश्यता की समस्या के साथ ही असमानता मूलक हिंदू धर्म-व्यवस्था की विसंगतियों को भी रेखांकित कर सकेंगे और

- आत्मकथा के प्रतिपाद्य को अच्छी तरह से विवेचित-विश्लेषित करने की क्षमता प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

आत्मकथा हिंदी साहित्य के संस्मरण, जीवनी, कथा-साहित्य से भिन्न एक स्वतंत्र और महत्वपूर्ण गद्य-विधा है। संस्मरण अपने जीवन से सम्बद्ध एक विशिष्ट स्थिति या प्रसंग तक सीमित होता है। महादेवी द्वारा लिखे गए 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि ग्रंथ संस्मरण साहित्य के अच्छे उदाहरण हैं। जीवनी महत्वपूर्ण व्यक्तियों पर दूसरों द्वारा लिखी जाती है। कथा-कहानी में कल्पित पात्रों को आधार बनाया जाता है। लेकिन आत्मकथा स्वयं अपने बारे में लिखी जाती है, इसलिए इसमें जीवनी और कथा-साहित्य की भाँति अनुमान और कल्पना के लिए कोई अवकाश नहीं होता। अतः आत्मकथा स्वयं अपने बारे में ईमानदारी से लिखा गया एक प्रामाणिक दस्तावेज माना जा सकता है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ काफी महत्वपूर्ण हैं।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्यकारों द्वारा आत्मकथा-लेखन की परंपरा काफी नयी है। हिंदी में जो थोड़ी-बहुत आत्मकथाएँ लिखी गई हैं, उनमें अपने व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने का ही प्रयास अधिक दिखाई देता है। हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा इसका प्रमाण है। उनकी आत्मकथा के अंतिम खंड पर टिप्पणी करते हुए दिबेन ने लिखा है कि यह आत्मकथा बच्चन की अपेक्षा उनकी कुतिया की अधिक हो जाती है। लेकिन बहुत सारे दलित साहित्यकारों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ उक्त तथ्य को गलत सिद्ध करती हैं। मराठी के दलित साहित्यकार दया पवार की आत्मकथा 'बलुत' इसका ज्वलंत उदाहरण है। इस दृष्टि से हिंदी के दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' एक सार्थक प्रयास माना जा सकता है। इस शृंखला की नई कड़ी के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गई आत्मकथा 'जूठन' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सूरजपाल चौहान की दलित जीवन से सम्बद्ध आत्मकथा 'तिरस्कृत' हाल ही में प्रकाशित हुई है जिसे दलित आत्मकथा की दिशा में एक सशक्त कदम माना जा सकता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, 1950 को मुजफ्फरपुर जनपद के बरला गाँव (उत्तर प्रदेश में स्थित) में एक अभावग्रस्त चूहड़ या भंगी परिवार में हुआ था। अपनी अत्यंत विषम और यातनापूर्ण परिस्थितियों को बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक झेलते हुए इस साहसी व्यक्ति ने अपनी प्रतिभा के बल पर पूर्ण शिक्षा प्राप्त करते हुए अंततः ऑर्डिनेंस फैक्टरी के सम्मानित पद को प्राप्त करने में सफलता हासिल की। महाराष्ट्र की चन्द्रपुर, उत्तर प्रदेश की देहरादून और मध्य प्रदेश की जबलपुर स्थित ऑर्डिनेंस फैक्ट्रियों में काम करते हुए भी ओमप्रकाश वाल्मीकि साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हैं। हिंदी कविता, कहानी, आलोचना के साथ ही आत्मकथा के लेखन में भी इन्होंने सफलतापूर्वक दलित साहित्य का प्रतिनिधित्व किया है। इनके पाँच कविता संग्रह, चार कहानी संग्रह और तीन आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनकी आत्मकथा 'जूठन' का आरंभिक अंश आपके वाचन के लिए दिया जा रहा है। उसे पढ़कर आप स्वयं इनकी पीड़ा और अभावग्रस्त दलित जीवन की यातना का अनुभव कर सकेंगे। इसके साथ ही आप पूरे देश के अछूत जीवन की अमानवीय और अपमानजनक स्थिति का भी अनुभव कर सकेंगे।

5.2 आत्मकथा : 'जूठन' का वाचन

हमारा घर चंद्रभान तगा के घर से सटा हुआ था। उसके बाद कुछ परिवार मुसलमान जुलाहों के थे। चंद्रभान तगा के घर के ठीक सामने एक छोटी-सी जोहड़ी (जोहड़ का स्त्रीलिंग) थी, जिसने चूहड़ों के बगड़ (बस्ती) और गाँव के बीच एक फासला बना दिया था। जोहड़ी का नाम डब्बोवाली था। डब्बोवाली नाम कैसे पड़ा कहना मुश्किल है। हाँ, इतना जरूर है कि इस डब्बोवाली जोहड़ी का रूप एक बड़े गड्डे के समान था, जिसके एक ओर तगाओं के पक्के मकानों की ऊँची दीवारें थीं। जिनसे समकोण बनाती हुई झींवरों के दो-तीन परिवारों के कच्चे मकानों की दीवारें थीं। उसके बाद फिर तगाओं के मकान थे। जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे, जिनके पीछे गाँव भर की औरतें, जवान लड़कियाँ, बड़ी-बूढ़ी यहाँ तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी-फरागत के लिए बैठ जाती थीं। रात के अंधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले में भी पर्दों में रहने वाली त्यागी महिलाएँ, घूँघट काढ़े, दुशाले ओढ़े इस सार्वजनिक खुले शौचालय में निवृत्ति पाती थीं। तमाम शर्म-लिहाज छोड़कर वे डब्बोवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़कर बैठ जाती थीं। इसी जगह गाँव भर के लड़ाई-झगड़े, गोलमेज कॉन्फ्रेंस की शकल में चर्चित होते थे। चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग-धडंग बच्चे, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह था वह वातावरण, जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श-व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।

उसी बगड़ में हमारा परिवार रहता था। पाँच भाई, एक बहन, दो चाचा, एक ताऊ का परिवार। चाचा और ताऊ अलग रहते थे। घर में सभी कोई न कोई काम करते थे। फिर भी दो जून की रोटी ठीक ढंग से नहीं चल पाती थी। तगाओं के घरों में साफ-सफाई से लेकर, खेती-बाड़ी, मेहनत-मजदूरी सभी काम होते थे। ऊपर रात-बेरात बेगार करनी पड़ती। बेगार के बदले में कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था। बेगार के लिए ना कहने की हिम्मत किसी में नहीं थी। गाली-गलौज, प्रताड़ना अलग। नाम लेकर पुकारने की किसी को आदत नहीं थी। उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े', बराबर या उम्र में छोटा है तो 'अबे चूहड़े के' यही तरीका या संबोधन था।

अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस का छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।

हमारे मोहल्ले में एक ईसाई आते थे। नाम था सेवक राम मसीही। चूहड़ों के बच्चों को घेरकर बैठे रहते थे। पढ़ना-लिखना सिखाते थे। सरकारी स्कूलों में तो कोई घुसने नहीं देता था। सेवक राम मसीही के पास सिर्फ मुझे ही भेजा गया था। भाई तो काम करते थे। बहन को स्कूल भेजने का सवाल ही नहीं था।

मास्टर सेवक राम मसीही के खुले, बिना कमरों, बिना टाट-चटाई वाले स्कूल में अक्षर-ज्ञान शुरू किया था। एक दिन सेवक राम मसीही और मेरे पिताजी में कुछ खटपट हो गई थी। पिताजी मुझे लेकर बेसिक प्राइमरी विद्यालय गए थे जो कक्षा पाँच तक था। वहाँ मास्टर हरफूल सिंह थे। उनके सामने मेरे पिताजी ने गिड़गिड़ाकर कहा

था, 'मास्टरजी, थारी मेहरबान्नी हो जागी जो म्हारे इस जाकत (बच्चा) कूबी दो अक्षर सिखा दोगे।'

मास्टर हरफूल सिंह ने अगले दिन आने को कहा था। पिताजी अगले रोज फिर गए। कई दिन तक स्कूल के चक्कर काटते रहे। आखिर एक रोज स्कूल में दाखिला मिल गया। उन दिनों देश को आजादी मिले आठ साल हो गए थे। गाँधी जी के अछूतोद्धार की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती थी। सरकारी स्कूलों के द्वार अछूतों के लिए खुलने शुरू तो हो गए थे, लेकिन जनसामान्य की मानसिकता में कोई विशेष बदलाव नहीं आया था। स्कूल में दूसरों से दूर बैठना पड़ता था, वह भी जमीन पर। अपने बैठने की जगह तक आते-आते चटाई छोटी पड़ जाती थी। कभी-कभी तो एकदम पीछे दरवाजे के पास बैठना पड़ता था। जहाँ से बोर्ड पर लिखे अक्षर धुंधले दिखते थे।

त्यागियों के बच्चे 'चूहड़े का' कहकर चिढ़ाते थे। कभी-कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब-सी यातनापूर्ण जिंदगी थी, जिसने मुझे अंतर्मुखी और चिड़चिड़ा, तुनकमिजाजी बना दिया था। स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था। हैंडपंप छूने पर बावला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे। मास्टर लोग भी हैंडपंप छूने पर सजा देते थे। तरह-तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे ताकि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ, और मैं भी उन्हीं कामों में लग जाऊँ, जिनके लिए मेरा जन्म हुआ था। उनके अनुसार, स्कूल आना मेरी अनधिकार चेष्टा थी।

मेरी ही कक्षा में राम सिंह और सुक्खन सिंह भी थे। राम सिंह जाति में चमार था और सुक्खन सिंह झींवर। राम सिंह के पिताजी और माँ खेतों में मजदूरी करते थे। सुक्खन सिंह के पिताजी इंटर कॉलेज में चपरासी थे। हम तीनों साथ-साथ पढ़े, बड़े हुए, बचपन के खट्टे-मीठे अनुभव समेटे थे। तीनों पढ़ने में हमेशा आगे रहे। लेकिन जाति का छोटापन कदम-कदम पर छलता रहा।

बरला गाँव में कुछ मुसलमान त्यागी भी थे। त्यागियों को भी तगा कहते थे। मुसलमान तगाओं का व्यवहार भी हिंदुओं जैसा ही था। कभी कोई अच्छा साफ-सुथरा कपड़ा पहनकर यदि निकले तो फब्तियाँ सुननी पड़ती थीं। ऐसी फब्तियाँ जो बुझे तीर की तरह भीतर तक उतर जाती थीं। ऐसा हमेशा होता था। साफ-सुथरे कपड़े पहनकर कक्षा में जाओ तो साथ के लड़के कहते, 'अबे चूहड़े का, नए कपड़े पहनकर आया है।' मैले-पुराने कपड़े पहनकर स्कूल जाओ तो कहते, 'अबे चूहड़े के, दूर हट, बदबू आ रही है।'

अजीब हालात थे। दोनों ही स्थितियों में अपमानित होना पड़ता था। चौक्षी कक्षा में थे। हेडमास्टर बिशम्बर सिंह की जगह कलीराम आ गए थे। उनके साथ एक और मास्टर आए थे। उनके आते ही हम तीनों के बहुत बुरे दिन आ गए थे। बात-बेबात पर पिटाई हो जाती थी। राम सिंह तो कभी-कभी बच भी जाता था, लेकिन सुक्खन सिंह और मेरी पिटाई तो आम बात थी। मैं वैसे भी काफी कमजोर और दुबला-पतला था उन दिनों।

सुक्खन के पेट पर पसलियों के ठीक ऊपर एक फोड़ा हो गया था, जिससे हर वक्त पीप बहती रहती थी। कक्षा में वह अपनी कमीज ऊपर की तरफ इस तरह मोड़कर रखता था, ताकि फोड़ा खुला रहे। एक तो कमीज पर पीप लगने का डर था, दूसरे मास्टर की पिटाई के समय फोड़े को बचाया जा सकता था

एक दिन मास्टर ने सुक्खन सिंह को पीटते समय उस फोड़े पर ही एक घूँसा जड़ दिया। सुक्खन की दर्दनाक चीख निकली। फोड़ा फूट गया था। उसे तड़पता देखकर मुझे भी रोना आ गया था। मास्टर हम लोगों को रोता देखकर लगातार गालियाँ बक रहा था। ऐसी गालियाँ जिन्हें यदि शब्दबद्ध कर दूँ तो हिंदी की अभिजात्यता पर धब्बा लग जाएगा। क्योंकि मेरी एक कहानी 'बैल की खाल' में एक पात्र के मुँह से गाली दिलवा देने पर हिंदी के कई बड़े लेखकों ने नाक-भौं सिकोड़ी थी। संयोग से गाली देने वाला पात्र ब्राह्मण था। ब्राह्मण यानी ब्रह्म का ज्ञाता और गाली....।

अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ-बहन की गालियाँ देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियातपन करते थे।

एक रोज हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, 'क्या नाम है बे तेरा?'

'ओमप्रकाश', मैंने डरते-डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया। हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी।

'चूहड़े का है?' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला।

'जी'

'ठीक है...वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़के झाड़ू बना ले। पत्तों वाली झाड़ू बनाना। और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा। तेरा तो यो खानदानी काम है। जा...फटाफट लग जा काम पे।'

हेडमास्टर के आदेश पर मैंने स्कूल के कमरे, बरामदे साफ कर दिए। तभी वे खुद चलकर आए और बोले, 'इसके बाद मैदान भी साफ कर दे।'

लंबा-चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था, जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी थी। धूल से चेहरा, सिर अँट गया था। मुँह के भीतर धूल घुस गई थी। मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था। हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे लेकिन निगाह मुझ पर टिकी थी। पानी पीने तक की इजाजत नहीं थी। पूरा दिन मैं झाड़ू लगाता रहा। तमाम अनुभवों के बीच कभी इतना काम नहीं किया था। वैसे भी घर में भाइयों का मैं लाड़ला था।

दूसरे दिन स्कूल पहुँचा। जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया। पूरे दिन झाड़ू देता रहा। मन में एक तसल्ली थी कि कल से कक्षा में बैठ जाऊँगा।

तीसरे दिन मैं कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद उनकी दहाड़ सुनाई पड़ी, 'अबे, ओ चूहड़े के, कहाँ घुस गया.....अपनी माँ...'

उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर-थर काँपने लगा था। एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, 'मास्साब, वो बैट्टा है कोणे में।'

हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली। उनकी उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटकवा। चीखकर बोले, 'जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू...नहीं तो..... में मिर्ची डालके स्कूल से बाहर काढ़ (निकाल) दूंगा।'

भयभीत होकर मैंने तीन दिन पुरानी वही शीशम की झाड़ू उठा ली। मेरी तरह ही उसके पत्ते सूखकर झरने लगे थे। सिर्फ बची थीं पतली-पतली टहनियाँ। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे थे। रोते-रोते मैदान में झाड़ू लगाने लगा। स्कूल के कमरों की खिड़की, दरवाजों से मास्टर्स और लड़कों की आँखें छिपकर तमाशा देख रही थीं। मेरा रोम-रोम यातना की गहरी खाई में लगातार गिर रहा था।

मेरे पिताजी अचानक स्कूल के पास से गुजरे। मुझे स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाता देखकर ठिठक गए। बाहर से ही आवाज देकर बोले, 'मुंशी जी, यो क्या कर रा है?' वे प्यार से मुझे मुंशी जी ही कहा करते थे। उन्हें देखकर मैं फफक पड़ा। वे स्कूल के मैदान में मेरे पास आ गए। मुझे रोता देखकर बोले, 'मुंशी जी....रोते क्यों हो? ठीक से बोल, क्या हुआ है?'

मेरी हिचकियाँ बँध गई थीं। हिचक-हिचककर पूरी बात पिताजी को बता दी कि तीन दिन से रोज झाड़ू लगवा रहे हैं। कक्षा में पढ़ने भी नहीं देते।

पिताजी ने मेरे हाथ से झाड़ू छीनकर दूर फेंक दी। उनकी आँखों में आग की गर्मी उतर आई थी। हमेशा दूसरों के सामने तीर-कमान बने रहने वाले पिताजी की लंबी-लंबी घनी मूँछे गुस्से में फड़फड़ाने लगी थीं। चीखने लगे, 'कौण-सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है....'

पिताजी की आवाज पूरे स्कूल में गूँज गई थी, जिसे सुनकर हेडमास्टर के साथ सभी मास्टर बाहर आ गए थे। कलीराम हेडमास्टर ने गाली देकर मेरे पिताजी को धमकाया। लेकिन पिताजी पर धमकी का कोई असर नहीं हुआ। उस रोज जिस साहस और हौसले से पिताजी ने हेडमास्टर का सामना किया, मैं उसे कभी भूल नहीं पाया। कई तरह की कमजोरियाँ थीं पिताजी में लेकिन मेरे भविष्य को जो मोड़ उस रोज उन्होंने दिया, उसका प्रभाव मेरी 'शख्सियत पर पड़ा।

हेडमास्टर ने तेज आवाज में कहा था, 'ले जा इसे यहाँ से....चूहड़ा होके पढ़ाने चला है....जा चला जा....नहीं तो हाड़-गोड़ तुड़वा दूंगा।'

पिताजी ने मेरा हाथ पकड़ा और लेकर घर की तरफ चल दिए। जाते-जाते हेडमास्टर को सुनाकर बोले, 'मास्टर हो....इसलिए जा रहा हूँ....पर इतना याद रखिए मास्टर.... यो चूहड़े का यहीं पढ़ेगा....इसी मदरसे में। और यो ही नहीं, इसके बाद और भी आवेंगे पढ़ने कू।'

बोध प्रश्न

'आत्मकथा' का मूल पाठ आपने पढ़ लिया होगा। पठित अंशों के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर को कोष्ठकों में संख्या का निर्देश करके बताएँ और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उसे मिलाकर जाँच लें।

- 1) सेवक राम मसीही क्या करते थे?
 - क) ईसाई धर्म का प्रचार करते थे।
 - ख) दीन-दुखिया लोगों की सेवा करते थे।
 - ग) चूहड़ों के बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाते थे।
 - घ) खेती-बाड़ी करते थे।

()

- 2) हेडमास्टर कलीराम ने स्कूल में बालक ओमप्रकाश को क्या काम सौंपा था?
क) श्रमपूर्वक पाठ तैयार करने का।
ख) स्कूल में अंदर और बाहर झाड़ू लगाने का।
ग) अपनी सेवा का।
घ) स्कूल के बच्चों की निगरानी का। ()
- 3) लेखक की उस कहानी का नाम बताएँ, जिसमें एक पात्र के मुँह से गाली दिलवाने के कारण हिंदी के कई बड़े लेखकों ने नाक-भौं सिकोड़ी थी?
क) 'सलाम'
ख) 'बैल की खाल'
ग) 'शव यात्रा'
घ) 'जंगल की रानी' ()
- 4) पठित अंश के आधार पर निम्नलिखित गद्यांश में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :
बरला गाँव में कुछ.....त्यागी भी थे। त्यागियों को भी.....कहते थे।
मुसलमान..... का व्यवहार भी.....जैसा था।

पिताजी को विश्वास था, गाँव के त्यागी मास्टर कलीराम की इस हरकत पर उसे शर्मिंदा करेंगे। लेकिन हुआ ठीक उल्टा। जिसका दरवाजा खटखटाया यही उत्तर मिला, 'क्या करोगे स्कूल भेजके' या 'कौवा बी कबी हंस बण सके', 'तुम अनपढ़ गँवार लोग क्या जाणो, विद्या ऐसे हासिल ना होती।', 'अरे! चूहड़े के जाकत कू झाड़ू लगाने कू कह दिया तो कोण-सा जुल्म हो गया', 'या फिर झाड़ू ही तो लगवाई है, द्रोणाचार्य की तरियों गुरु-दक्षिणा में अँगूठा तो नहीं माँगा' आदि-आदि।

पिताजी थक-हार निराश लौट आए, बिना खाए-पिए रात भर बैठे रहे। पता नहीं किस गहन पीड़ा को भोग रहे थे मेरे पिताजी। सुबह होते ही उन्होंने मुझे साथ लिया और प्रधान सगवा सिंह त्यागी की बैठक में पहुंच गए।

पिताजी को देखते ही प्रधान बोले. 'अबे, छोटन.....क्या बात है? तड़के ही तड़के आ लिया'

'चौधरी साहब, तम तो कहो ते सरकार ने चूहड़े-चमारों के जाकतों (बच्चों) के लिए मदरसों के दरवाजे खोल दिए हैं। और यहाँ तो हेडमास्टर मेरे इस जाकत कू पढ़ाने के बजाए क्लास से बाहर लाके दिन भर झाड़ू लगवावे है। जिब यो दिन भर मदरसे में झाड़ू लगावेगा तो इब तम ही बताओ पढ़ेगा कब?' पिताजी प्रधान के सामने गिड़गिड़ा रहे थे। उनकी आँखों में आँसू थे। मैं पास खड़ा पिताजी को देख रहा था।

प्रधान ने मुझे अपने पास बुलाकर पूछा, 'कोण-सी किलास में पढ़े है?'

'जी चौथी में।'

'म्हारे महेन्द्र की किलास में ही हो?'

'जी।'

प्रधान जी ने पिताजी से कहा, 'फिकर ना कर कल मदरसे में इसे भेज देणा।'

अगले रोज डरते-डरते मैं स्कूल पहुँचा, डरा-डरा कक्षा में बैठा रहा, हर क्षण लगता था अब आया हेडमास्टर...अब आया। जरा-सी आहट पर दिल घबराने लगता था। उसके बाद स्थिति सामान्य हो गई थी। लेकिन कलीराम हेडमास्टर को देखते ही मेरी रूह काँप जाती थी। लगता, जैसे सामने से मास्टर नहीं कोई जंगली सूअर थूथनी उठाए चिंचियाता चला आ रहा है।

गेहूँ की फसल कटने के वक्त मोहल्ले के सभी लोग तगाओं के खेतों में गेहूँ काटने जाते थे। तपती दोपहर में गेहूँ काटना बहुत कष्टप्रद और कठिन होता है। सिर पर बरसती धूप। नीचे तपती जमीन, नंगे पाँव में कटे पौधों की जड़ें शूल की तरह तलवों में चुभती थीं। उनसे भी ज्यादा चुभन होती थी सरसों और चने की जड़ों से। चना काटने में एक कठिनाई और थी। चने के पत्तों पर खटाई होती है जो काटते समय पूरे शरीर पर चिपक जाती है। नहाने पर भी कम नहीं होती। कटाई करने वाले अधिकतर चूहड़े या चमार ही होते थे, जिनके तन पर कपड़े सिर्फ नाम भर के होते थे। पाँव में जूता होने का तो सवाल ही नहीं होता था। नंगे पाँव फसल कटने तक बुरी तरह घायल हो जाते थे।

फसल-कटाई को लेकर अक्सर खेतों में हुज्जत चलती रहती थी। मजदूरी देने में ज्यादातर तगा कंजूसी बरतते थे। काटने वालों की मजबूरी थी। जो भी मिलता, थोड़ी-बहुत ना-नुकर के बाद लेकर घर लौट आते। घर आकर कुढ़ते रहते या तगाओं को कोसते रहते। लेकिन भूख के सामने विरोध दम तोड़ देता था। हर साल फसल-कटाई को लेकर मोहल्ले में बैठकें होतीं। सोलह पूली पर एक पूली मेहनताना लेने की कसमें खाई जातीं। लेकिन कटाई शुरू होते ही बैठकों के तमाम फैसले, कसमें हवा हो जाते थे। इक्कीस पूली पर एक पूली मजदूरी मिलती थी। एक पूली में एक किलो से भी कम गेहूँ निकलते थे। भारी से भारी पूली में एक किलो गेहूँ नहीं निकलता था। यानी दिन भर की मजदूरी एक किलो गेहूँ से भी कम, कटाई के बाद बैलगाड़ी या झोटा बुग्गी (भैंसा बुग्गी) में लदाई, उतराई अलग। उसका कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था। देर-सबेर खलिहानों में बैल हाँकने की बेगार सभी को करनी पड़ती थी। उन दिनों गेहूँ सफाई के 'क्रेशर' नहीं हुआ करते थे। बैलों को गोलाई में घुमा घुमाकर गेहूँ के पौधों को भूसे की शकल में बदला जाता था। फिर भूसे से गेहूँ छाज से हवा में उड़ाकर अलग किए जाते थे। यह एक काफी लंबा और थका देने वाला काम था, जिसे अधिकतर चमार या चूहड़े ही करते थे।

मेरी माँ इन सब मेहनत-मजदूरियों के साथ-साथ आठ-दस तगाओं (हिंदू-मुसलमान) के घर तथा घर (मर्दों का बैठकखाना तथा मवेशियों को बाँधने की जगह) में साफ-सफाई का काम करती थी। इस काम में मेरी बहन, बड़ी भाभी तथा जसबीर और जनेसर (दो भाई) माँ का हाथ बँटाते थे। बड़ा भाई सुखबीर तगाओं के यहाँ वार्षिक-नौकर की तरह काम करता था।

प्रत्येक तगा के घर में दस से पंद्रह मवेशी (गाय, भैंस और बैल) सामान्य बात थी। उनका गोबर उठाकर गाँव से बाहर कुरड़ियों पर या उपले बनाने की जगह डालना पड़ता था। प्रत्येक घर से रोज पाँच-छह टोकरे गोबर निकलता था। सर्दी के महीनों में यह काम बहुत कष्टदायक होता था। गाय, भैंस और बैलों को सर्दी से बचाने के लिए बड़े-बड़े दालानों में बाँधा जाता था, जिनमें गन्ने की सूखी पाती या फूस बिछा होता था। रात भर जानवरों का गोबर और मूत्र पूरे दालान में फैल जाता था। दस-पंद्रह दिनों में एक बार पाती बदली जाती थी या उसके ऊपर सूखी पाती बिछा

दी जाती थी। इतने दिनों में दालानों में भरी दुर्गंध से गोबर-ढूँढ़के निकालना बहुत तकलीफदेह होता था, दुर्गंध से सिर भिन्ना जाता था।

इन सब कामों के बदले मिलता था दो जानवर पीछे फसल के समय पाँच सेर अनाज यानी लगभग ढाई किलो अनाज। दस मवेशी वाले घर से साल भर में 25 सेर (लगभग 12-13)किलो अनाज दोपहर को प्रत्येक घर से एक बची-खुची रोटी, जो खास तौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनाई जाती थी। कभी-कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी।

शादी ब्याह के मौकों पर, जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजों के बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे। बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरो में डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्टी कर लेते थे। पूरी के बचे-खुचे टुकड़े, एक आधा मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी-बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी। जिस बारात की पत्तलों से जूठन कम उतरती थी कहा जाता था कि भुक्खड़ (भूखे) लोग आ गए हैं बारात में जिन्हें कभी खाने को कुछ नहीं मिला। सारा चट कर गए। अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात से इतनी जूठन आई थी कि महीनों तक खाते रहे थे।

पत्तलों से जो पूरियों के टुकड़े एकत्र होते थे उन्हें धूप में सुखा लिया जाता था। चारपाई पर कोई कपड़ा डालकर उन्हें फैला दिया जाता था। अक्सर मुझे पहरे में बैठाया जाता था। क्योंकि सूखने वाली पूरियों पर कव्वे, मुर्गियाँ, कुत्ते अक्सर टूट पड़ते थे। जरा-सी आँख बची कि पूरियाँ साफ, इसलिए डंडा लेकर चारपाई के पास बैठना पड़ता था।

ये सूखी पूरियाँ बरसात के कठिन दिनों में बहुत काम आती थीं। इन्हें पानी में भिगोकर उबाल लिया जाता था। उबली हुई पूरियों पर बारीक मिर्च और नमक डालकर खाने में मजा आता था। कभी-कभी गुड़ डालकर लुगदी जैसा बन जाता था, जिसे सभी बहुत चाव से खाते थे।

आज जब मैं इन सब बातों के बारे में सोचता हूँ तो मन के भीतर काँटे उगने लगते हैं, कैसा जीवन था?

दिन-भर मर-खपकर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं। कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं।

जब मैं छोटा था, माँ के साथ जाता था। माँ-पिताजी का हाथ बँटाने। तगाओं (त्यागियों) के खाने को देखकर अक्सर सोचा करता था कि हमें ऐसा खाना क्यों नहीं मिलता? आज जब सोचता हूँ तो जी मितलाने लगता है।

अभी पिछले वर्ष मेरे निवास पर सुखदेव त्यागी का पोता सुरेंद्र आया था, किसी इंटरव्यू के सिलसिले में। गाँव से मेरा पता लेकर आया था। रात में रुका।

मेरी पत्नी ने उसे यथासंभव अच्छा खाना खिलाया। खाना खाते-खाते वह बोला, 'भाभी जी, आपके हाथ का खाना तो बहुत जायकेदार है। हमारे घर में तो कोई भी ऐसा खाना नहीं बना सकता है।'

उसकी बात सुनकर मेरी पत्नी तो खुश हुई, 'लेकिन मैं काफी देर तक विचलित रहा। बचपन की घटनाएँ स्मृति का दरवाजा खटखटाने लगीं।

सुरेंद्र तब पैदा भी नहीं हुआ था। उसकी बड़ी बुआ यानी सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की की शादी थी। उनके यहाँ मेरी माँ सफाई करती थी। शादी से दस-बारह दिन पहले से माँ पिताजी ने सुखदेव सिंह त्यागी के घर-आँगन से लेकर बाहर तक के अनेक काम किए थे। बेटी की शादी का मतलब गाँव-भर की इज्जत का सवाल था। कहीं कोई कमी न रह जाए। गाँव भर से चारपाइयाँ ढो-ढोकर जनवासे में इकट्टी की थीं पिताजी ने।

बारात खाना खा रही थी। माँ टोकरा लिए दरवाजे से बाहर बैठी थी। मैं और मेरी छोटी बहन माया माँ से सिमटे बैठे थे। इस उम्मीद में कि भीतर से जो मिठाई और पकवानों की महक आ रही है, वह हमें भी खाने को मिलेगी।

जब सब लोग खाना खाकर चले गए तो मेरी माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा, 'चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गए...म्हारे जाकतों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इंतजार कर रहे ते।'

सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा, 'टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है...ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपणी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।'

सुखदेव सिंह त्यागी के वे शब्द मेरे सीने में चाकू की तरह उतर गए थे, जो आज भी अपनी जलन से मुझे झुलसा रहे हैं।

उस रोज मेरी माँ की आँखों में दुर्गा उतर आई थी। माँ का वैसा रूप मैंने पहली बार देखा था। माँ ने टोकरा वहीं बिखेर दिया था। सुखदेव सिंह से कहा था, 'इसे ठाके अपने घर में धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देणा....।'

हम दोनों भाई-बहनों का हाथ पकड़ के तीर की तरह उठकर चल दी थी। सुखदेव सिंह माँ पर हाथ उठाने के लिए झपटा था, लेकिन मेरी माँ ने शेरनी की तरह सामना किया था। बिना डरे।

उसके बाद माँ कभी उनके दरवाजे पर नहीं गई और जूठन का सिलसिला भी उस घटना के साथ बंद हो गया था।

वही सुखदेव सिंह मेरे निवास पर एक बार आया था। मेरी पत्नी ने गाँव-देहात के बुजुर्ग के नाते उनका आदर-सत्कार किया था। उसने मेरे घर खाना भी खाया था। लेकिन जब वह चला गया तो मेरे भतीजे संजय खैरवाल, जो बी.एस.सी. का छात्र है, ने बताया कि चाचा जी, उन्होंने सिर्फ आपके घर खाया है, हमारे घर तो पानी भी नहीं पिया था।

बोध प्रश्न

पठित मूल पाठ के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

- 5) 'द्रोणाचार्य की तरियों (तरह) गुरु-दक्षिणा में अंगूठा तो नहीं माँगा।' यह कथन किसका है?
- क) सेवाराम मसीही का।
ख) कलीराम हेडमास्टर का।
ग) शिकायत सुनने के बाद गाँव वालों का।
घ) ग्राम-प्रधान सगवा सिंह का। ()
- 6) हेडमास्टर कलीराम की गाँव वालों से शिकायत करने पर लेखक के पिता को क्या उत्तर मिले? निम्नलिखित उत्तरों में से एक गलत है, उसे निर्दिष्ट करें -
- क) सुराज मिल जाने पर उसे ऐसा करने की हिम्मत कैसे हुई।
ख) कौवा बी कबी हंस बण सके।
ग) तुम अनपढ़ गंवार लोग क्या जाणो, ऐसे विद्या हासिल ना होती।
घ) चूहड़े के जाकत को झाड़ू लगाने को कह दिया तो कौण-सा जुलम हो गया? ()
- 7) 'दिनभर मर-खपकर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं। कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं।' इस कथन द्वारा लेखक ने अपने किस भाव को व्यक्त किया है।
- क) संतोष-भाव को।
ख) सहनशीलता को।
ग) घृणा और आक्रोश को।
घ) उदारता को। ()
- 8) पठित अंश के आधार पर निम्नलिखित गद्यांश के रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -
पिताजी ने मेरे हाथ से.....दूर फेंक दी। उनकी आँखों में आग की गर्मी.....थी।
हमेशा दूसरों के सामने.....बने रहने वाले पिताजी की लंबी-लंबी.....गुस्से में.....
..थी।

5.3 सार

आत्मकथा के एक छोटे और आरंभिक अंश का आपने अध्ययन किया है। पिछली इकाइयों में जिस तरह आपने कहानी और निबंध के सार का अध्ययन किया है, वैसा यहाँ नहीं मिलेगा। एक होनहार व्यक्ति के पाँचवीं कक्षा तक की परीक्षा पास करने तक की ही चर्चा इस छोटे से अंश में हो सकी है। लेकिन इसके माध्यम से भी कई महत्वपूर्ण तथ्य रेखांकित हुए हैं। सबसे पहले लेखक ने बरला गाँव के वातावरण और उसकी चौहद्दी का चित्र प्रस्तुत किया है, जो संपूर्ण भारतीय गाँवों की स्थिति को स्पष्ट करता है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित इस ग्राम-व्यवस्था में भंगियों, चमारों, धोबियों, कुम्हारों तथा अनेक अछूत जाति के लोगों को उच्च समझी जाने वाली जातियों से अलग-थलग और थोड़ी दूरी पर गंदी बस्तियों में अत्यंत कठोर परिस्थितियों में जीवन बिताने के लिए विवश किया जाता है। इसका एक जीता जागता और एक गलाजत भरा चित्र उपस्थित करने के बाद लेखक ने अपनी

प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श-व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।' (पृ.11) यह टिप्पणी लेखक की जीवन-दृष्टि को संकेतित करती है, जो पूरी आत्मकथा में स्थान-स्थान पर अत्यंत तीव्रता और आक्रोश के साथ व्यक्त हुई है।

गाँव का पूरा खाका प्रस्तुत करने के बाद लेखक ने अपनी जाति (चूहड़ा या भंगी) के प्रति ऊँची जाति, विशेष कर त्यागियों के दुर्व्यवहार की भी चर्चा की है। बेगार, गाली-गलौज और घोर प्रताड़ना के साथ 'ओ चूहड़े', 'अबे चूहड़े' जैसे संबोधन का जिक्र करते हुए लेखक ने बताया है कि उनकी जिंदगी कुत्ते-बिल्ली जैसे जानवरों से भी बदतर बना दी गई थी। चूहड़े का स्पर्श भी पाप समझा जाता था। उस समय देश को आजादी मिले आठ साल हो गए थे। सर्वत्र गांधी जी के अछूतोद्धार की प्रति-ध्वनि सुनाई पड़ती थी। कानूनी तौर पर सरकारी स्कूलों के द्वार अछूतों के लिए खोल दिए गए थे। लेकिन जनसामान्य की मानसिकता अभी पहले जैसी ही बनी हुई थी। इसलिए स्कूल में प्रवेश पाने की कठिनाई के कारण लेखक को पढ़ने-लिखने के लिए उसके पिता ने सेवाराम मसीही की शरण में भेजा। वहाँ से भी किसी खटपट के कारण उसे अलग होना पड़ा। बड़ी मुश्किल से सरकारी स्कूल में उसे दाखिला मिल सका। वहाँ अध्यापकों से लेकर ऊँची जाति के विद्यार्थियों द्वारा उसे जिस प्रकार से प्रताड़ित किया जाता था, उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। हेडमास्टर कलीराम लेखक को पढ़ाई से अलग कर स्कूल के अंदर और बाहर की सफाई का भार सौंप देते थे। इससे इनकार करने पर उसे स्कूल से निकाल दिया जाता है। अपने पिता के प्रोत्साहनपूर्ण साहस के सहारे वह सारी यातनाओं को झेलकर भी पाँचवीं की परीक्षा पास कर लेता है।

अपनी शिक्षा-दीक्षा की अमानवीय परिस्थितियों के साथ ही लेखक ने फसलों की कटाई-बुवाई बड़ी जातियों के घरों और पशुशालाओं की सफाई के बदले मिलने वाली अधिक गाली और कम मजदूरी को बड़े मार्मिक ढंग से दर्शाया है। आत्मकथा के निर्धारित अंश के अंत में लेखक ने जूठन की अमानवीय प्रथा का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। शादी-ब्याह के मौकों पर जब मेहमान और बाराती खाना खा रहे होते हैं तो चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते हैं। खाने की समाप्ति के बाद जूठी पत्तलें उनके टोकरों में डाल दी जाती हैं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी करके कुछ खा लेते हैं और शेष भविष्य के लिए सुखाकर सुरक्षित रख लेते हैं। सुखदेव सिंह की लड़की की शादी पर जूठन की आस में ही लेखक के माँ-बाप और भाई-बहनों ने एक पखवाड़े तक उनके यहाँ रात-दिन बेगारी की थी। इसका जिक्र करते हुए लेखक ने लिखा है, 'बारात खाना खा रही थी। माँ टोकरा लिए दरवाजे के पास बैठी थी। मैं और मेरी छोटी बहन माया माँ से सिमटे बैठे थे। इस उम्मीद में कि भीतर से जो मिटाई और पकवानों की महक आ रही थी, वह हमें भी खाने को मिलेगी।' भोजन की समाप्ति के बाद जब चौधरी सुखदेव सिंह दिखाई दिए तो। उसकी माँ ने कहा - चौधरी जी एक पत्तल में कुछ डालकर हमारे बच्चों को दे दो। वे भी तो इसी दिन का इंतजार कर रहे थे। इसपर चौधरी सुखदेव सिंह ने टोकरे की ओर इशारा करके कहा कि 'टोकरा भर जूठन ले जा रही है...ऊपर से जाकतों (बच्चों) के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा.. ...और चलती बन।' माँ ने इस अपमान का प्रतिकार करते हुए टोकरा वहीं बिखेर दिया और सुखदेव सिंह से कहा कि उसे उठाकर अपने घर में रख लो और सुबह बारातियों

को नाश्ते में खिला देना। यह सुनकर सुखदेव सिंह माँ पर झपटा लेकिन शेरनी की तरह माँ ने उसका सामना किया। इस घटना के बाद लेखक के परिवार से जूठन का सिलसिला समाप्त हो गया। वस्तुतः इस घटना के कारण ही लेखक ने आत्मकथा को 'जूठन' शीर्षक दिया है, जो इसकी अंतर्वस्तु के साथ ही उसके प्रतिपाद्य को भी रेखांकित करता है। उच्च और सम्मानित पद पर नौकरी प्राप्त करने के पच्चीस-तीस वर्ष बाद सुखदेव सिंह अपने पोते को लेखक के घर भेजता है, किसी इंटरव्यू के सिलसिले में और स्वयं उसके घर जाकर सम्मानपूर्वक भोजन करता है। इस प्रकार 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा की समूची अंतर्वस्तु का संकेत निर्धारित अंश से मिल जाता है। लेकिन इस आत्मकथा के संपूर्ण महत्व को आप पूरी रचना को पढ़ने के बाद ही समझ सकेंगे। अतः हमारा आग्रह है कि आप एक बार 'जूठन' को अवश्य पढ़ें।

'जूठन' में आत्मकथाकार के जीवन की बहुत सारी घटनाएँ, उसके विद्यार्थी जीवन से लेकर नौकरी पेशे में रहते हुए इतने सारे अनुभव हैं, जिन्हें जाने-बूझे बिना दलित समस्या की गंभीरता और सामाजिक महत्व को नहीं समझा जा सकता। ऐसी कुछ घटनाओं का उल्लेख आपके लिए उपयोगी हो सकता है। उदाहरण के लिए, पाँचवीं के बाद के स्कूल-जीवन की एक घटना को लिया जा सकता है। कक्षा में अध्यापक मनोयोगपूर्वक द्रोणाचार्य का पाठ पढ़ा रहे थे। उनकी गरीबी का मार्मिक चित्रण करते हुए उन्होंने द्रोणाचार्य द्वारा अपने पुत्र अश्वत्थामा को भूख से तड़पते हुए देख पानी में आटा घोल कर पिलाने की घटना का जिक्र कर सभी विद्यार्थियों को करुणाभिभूत कर दिया। इसपर किशोर लेखक ने प्रश्न किया कि 'अश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का माँड। फिर किसी भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया?' इस प्रश्न से क्रुद्ध अध्यापक ने अपने उत्तर में उसे मुर्गा बनाकर शीशम की छड़ी से प्रहार करते हुए कहा कि 'चूहड़े के, तू द्रोणाचार्य से बराबरी करे है.....ले तेरे ऊपर मैं महाकाव्य लिखूँगा.....' उसने मेरी पीठ पर सटाक-सटाक छड़ी से महाकाव्य रंग दिया था। यह महाकाव्य आज भी मेरी पीठ पर अंकित है। भूख और असहाय जीवन के क्षणों में सामंती सोच का यह महाकाव्य मेरी पीठ पर ही नहीं, मेरे मस्तिष्क के रेशे-रेशे पर अंकित है।' (पृ.34-35)

अपने विद्यार्थी जीवन में ही लेखक का अम्बेडकर साहित्य से परिचय हुआ। इसके बाद गांधी जी के अछूतोद्धार और उनकी उदारता के प्रति भी उसमें संदेह जागृत हुआ। इसकी चर्चा करते हुए उसने लिखा है, गांधी जी ने "हरिजन" नाम देकर अछूतों को राष्ट्रीय धारा से नहीं जोड़ा, बल्कि हिंदुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाया। उनके हितों की रक्षा की।' (पृ.89) महाराष्ट्र के अंबरनाथ और चन्द्रपुर में अपने ट्रेनिंग और सेवाकाल में ओमप्रकाश वाल्मीकि के मराठी दलित साहित्य और उसके महत्वपूर्ण रचनाकारों से परिचय ने उन्हें नई चेतना प्रदान की इसके बीज उनके देहरादून के कॉलेज जीवन में ही अंकुरित हो चुके थे। इसी का परिणाम 'जूठन' शीर्षक उनकी आत्मकथा है। अपनी कहानियों, कविताओं, आलोचनात्मक टिप्पणियों के माध्यम से वे दलित साहित्य को हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए निरंतर कार्यरत हैं। इस संदर्भ में ही उनकी आत्मकथा की अंतर्वस्तु और उसके प्रतिपाद्य का सही ढंग से मूल्यांकन किया जा सकता है।

5.4 अंतर्वस्तु

आपने इस आत्मकथा के मूल पाठ और सार को पढ़कर यह समझ लिया होगा कि इसकी अंतर्वस्तु पर कहानी और निबंध की तरह विचार तथा भाव-पक्ष को अलग-अलग करके विवेचित-विश्लेषित नहीं किया जा सकता। व्यक्तिगत अनुभूतियों की गहनता और जीवंतता ने उनके विचारों को पूरी तरह अपने अनुशासन में बांध कर रखा है। इस दृष्टि से देखा जाए तो आत्मकथाकार के अपने जीवन की पीड़ा, यातना और पग-पग पर उपस्थित होने वाले विरोध भाव आदि दलित जीवन की यंत्रणा-मुक्ति के उद्देश्य से परिचालित हैं। अतः यह आत्मकथा स्वयं की व्यथा-कथा बन जाती है। इस आत्मकथा में आरंभ से अंत तक लेखक ने स्वयं के माध्यम से दलित जीवन की असहायता, विवशता और हर तरह के अत्याचारों के साथ सवर्णों या ऊँची जातियों द्वारा स्वीकृत वर्ण-व्यवस्था, ब्राह्मण वर्चस्व, सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था, सामंती मानसिकता आदि के प्रति विद्रोह भावना के रूप में अपनी तीव्र मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त की है। इसलिए आत्मकथा की अंतर्वस्तु असमानतामूलक जाति पर आधारित भारतीय समाज-रचना की एक गंभीर समस्या अर्थात् दलित जीवन की त्रासदी मानी जा सकती है।

वैचारिक दृष्टि से देखें तो इस आत्मकथा में लेखक का सामाजिक चिंतन भी स्थान-स्थान पर उजागर हुआ है। लेकिन चिंतनगत निष्कर्ष के आधार उसके जीवनानुभव ही बने हैं। चिंतन के लिए चिंतन अर्थात् मुक्त चिंतन में उसका विश्वास नहीं है। उसने खुलकर अछूत और दलित जीवन की त्रुटियों को भी उजागर किया है। भूत-प्रेत, देवी-देवता, झाड़ू-फूंक, भगत-ओझा, टोना-टोटका में उसका विश्वास, कर्म-फल और भाग्य के प्रति उसकी आस्था आदि उसके जीवन के अभिशाप को और तीखा बनाती हैं। इसके लिए लेखक ने अशिक्षा और रूढ़िवादिता को कारण अवश्य बताया है, लेकिन शिक्षित और सम्पन्न होने के बावजूद अछूतों द्वारा अपने जातिसूचक 'सरनेम' को छिपाने के पीछे के मानसिक द्वंद्व को दर्शाता है, तथा अलगाव के डर, जातिवादी मानसिकता के कारण अदलितों द्वारा दलितों के किए जाने वाले तिरस्कार और हेय दृष्टि से बचने का यह एक प्रयास भी है। जाति प्रथा से जूझने के लिए समानतामूलक समाज की आवश्यकता को लेखक ने शिद्दत से महसूस किया है। सामाजिक बदलाव से ही इस समस्या का समाधान होने की संभावना और यही दलित जीवन के उद्धार का एकमेव मार्ग हो सकता है। लेखक को दलित मुक्ति का जो मार्ग अभिप्रेत है वही दलित जीवन में व्याप्त भयानक शोषण और उत्पीड़न को दूर करने का एकमात्र सही कदम है। ऊँची जातियों के स्तर तक पहुँचने की होड़ का भी उसने खुलकर चित्रण किया है। इससे लगता है कि मात्र शिक्षा और आर्थिक स्तर में सुधार के माध्यम से ही दलित जीवन का उद्धार वह संभव नहीं मानता। लेखक ने समस्या का जो भयावह रूप उजागर किया है वह कई स्तरों पर, कई कोणों से इससे मुक्ति पाने के लिए प्रेरित करता है।

5.5 चरित्र-विश्लेषण

आत्मकथा रचनाकार के चरित्र का एक प्रामाणिक दस्तावेज होती है। लेकिन इसके लिए एक आवश्यक शर्त है कि रचनाकार अपने बारे में लिखते हुए पूरी ईमानदारी का परिचय दे। इसदृष्टि से जहाँ तक ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रश्न है इन्होंने प्रायः पूरी ईमानदारी का परिचय दिया है। बचपन, किशोरावस्था के विद्यार्थी जीवन से लेकर

नौकरीपेशा में कार्यरत होने तक के अपने सारे अनुभवों और जीवन-यापन संबंधी घटनाओं, प्रसंगों, विषम स्थितियों अपनी आशाओं-आकांक्षाओं पर कहीं भी इन्होंने पर्दा नहीं डाला है। इनकी कमजोरियाँ, क्षमताएँ-अक्षमताएँ इस आत्मकथा में ईमानदारी से व्यक्त हुई हैं।

अनेक विषम और विरोधी परिस्थितियों के बावजूद लेखक ने कभी हिम्मत नहीं छोड़ी। जीवन की दौड़ में एक सफल व्यक्ति बनने के बाद भी उसने अपनी इनसानियत को कायम रखा और इनसानी सरोकारों के प्रति समर्पित रहा है। एक साहित्यकार ही नहीं वरन् एक सांस्कृतिक-सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी सक्रियता का परिचय दिया है। जातीय विषमता से ग्रस्त भारतीय समाज में जो एक परोक्ष या प्रत्यक्ष संघर्ष की स्थिति है, उसे वर्ग-संघर्ष कहें या जातीय संघर्ष, उसमें इन्होंने खुलकर हिस्सा लिया है। इस उत्कट संघर्ष की भावना का बीज उनके गाँव के आरंभिक जीवन में पड़ गया था। अपने विषमताग्रस्त ग्रामीण माहौल का चित्र उपस्थित करने के बाद उन्होंने निष्कर्ष दिया है, 'अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे (चूहड़े) जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।' इस उद्धरण में चित्रित स्थिति स्वाधीनता के बाद 1955-56 ई. की है, लेकिन प्रतिक्रिया 1995-96 की है। क्या चालीस वर्षों में इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ? यह एक प्रश्न है, जिसपर विचार करना लेखक की ईमानदारी और उसके चरित्र का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है। जब एक लंबे समय के बाद चौधरी सुखदेव सिंह का पोता सुरेंद्र लेखक के घर जाकर रात को ठहरता है और उसकी पत्नी के हाथों बने हुए भोजन की तारीफ करते हुए खाना खाता है तथा स्वयं चौधरी का लेखक के घर जाकर भोजन करना इस बात का संकेत करता है कि अस्पृश्यता का बंधन 35-40 वर्षों में काफी शिथिल पड़ा है। इस परिवर्तन को लेखक ने अपनी रचना में कहीं भी महत्व के साथ रेखांकित नहीं किया है। अतः कहीं-कहीं उसका क्रोध या आक्रोश ईर्ष्या का रूप भी लेते हुए दिखाई देता है।

उपर्युक्त तथ्य के बावजूद आज भी भारतीय समाज में अछूत और दलित की अपमानजनक स्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता। इस पिछड़े हुए समुदाय के प्रति लेखक की असीम सहानुभूति उसके उदार चरित्र को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। उससे प्रेरणा ग्रहण कर हम इस दलित समस्या के प्रति सक्रिय नहीं तो कम-से-कम अपना बौद्धिक और भावनात्मक समर्थन देने के लिए विवश हो जाते हैं। इस आत्मकथा में इसे लेखकीय चरित्र की सार्थकता मानी जा सकती है।

5.6 परिवेश

पिछली इकाई में महादेवी जी के निबंध 'जीने की कला' का परिवेशगत अध्ययन करते हुए हमने इस तथ्य को विस्तार से देखा है कि रचना के मूल्यांकन के लिए परिवेश की जानकारी काफी महत्वपूर्ण होती है। यदि हम 1930-35 के भारतीय सामाजिक परिवेश को नजरअंदाज कर दें तो आज के संदर्भ में महादेवी जी की नारी समस्या विषयक मान्यताएँ काफी अतिरंजित लग सकती हैं। इस तथ्य को हम कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि रचनात्मक विधाओं के साथ आलोचना पर भी समान रूप से लागू होते हुए देखते हैं। आत्मकथा जैसी पूर्णतः आत्मनिष्ठ विधा के लिए तो तद्युगीन

सामाजिक परिवेश की जानकारी और अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। भारतीय समाज—व्यवस्था वर्ण—व्यवस्था से विकृत रूप धारण कर धीरे—धीरे जाति—व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। आरंभ में यह पेशेवर जाति—व्यवस्था ग्रामाश्रित समाज—व्यवस्था की ठोस आधारशिला बनी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य पेशेवर जातियाँ — लोहार, बढ़ई, कहार, नाई, बरई (तंबोली) आदि अपेक्षाकृत कम नीची समझी जाने वाली जातियाँ गाँव में एक साथ रहती थीं। ये सभी जातियाँ एक—दूसरे पर निर्भर थीं, किसी एक के बिना दूसरे का काम चलना संभव नहीं था। इसके साथ ही डोम, धरकार, भंगी, चमार, चांडाल आदि अनेक अछूत का समुदाय भी था, जो ग्रामाश्रित व्यवस्था का अविभाज्य अंग था। लेकिन इन्हें मूल गाँव से कुछ दूरी पर अलग बस्ती में रहने के लिए मजबूर किया गया था। जाति—व्यवस्था के विधि—निषेधों का कड़ाई से पालन करना दलितों के लिए अनिवार्य बना दिया गया था। इस व्यवस्था द्वारा स्थापित मान्यताओं के विरोध या अतिक्रमण पर दलितों को मृत्युदण्ड तक की सज़ा प्रायः दी जाती रही है। सवर्ण एवं उच्च जातियों के लोगों को यह स्वीकार नहीं कि अछूत और दलित जातियों के लोग उनके बीच निवास करें। उनके निवास—स्थल को प्रायः बस्ती के नाम से जाना जाता है। गांधी जी ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया था, लेकिन दलितों द्वारा 'हरिजन' शब्द का विरोध किया गया क्योंकि यह शब्द दलितों को हरि के जन कहकर अधिक घृणित स्थिति में पहुंचा देता है। अवैध संतान या जन के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया गया था। अतः इसका दलितों द्वारा विरोध होना स्वाभाविक ही था।

ग्रामीण सवर्ण समुदाय द्वारा बस्ती की अछूत जातियों पर निर्मम अत्याचार एक कठोर सच्चाई बन गई थी, जो आज भी किसी—न—किसी रूप में जारी है। सवर्णों द्वारा इन्हें पशु से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए विवश किया जाता रहा है। आर्थिक अधिकार से लेकर इन्हें सभी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रखा गया। हिंदू धर्म के अनेक ग्रंथों, स्मृतियों, संहिताओं की रचना इस अमानवीय व्यवस्था को उचित ठहराने के लिए की गई थी। ऐसी अछूत और दलित जातियों की सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि इन्हें भी हिंदू मान लिया गया था। सवर्णों के अत्याचार और झूठे हिंदूपन से मुक्ति पाने के लिए इन जातियों ने कभी—कभी और कहीं—कहीं पर सामूहिक रूप से स्वेच्छापूर्वक इस्लाम, ईसाई, बौद्ध आदि धर्मों को स्वीकार किया। धर्मांतरण की इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बहुत सारे हिंदू आंदोलन भी चले। लेकिन हिंदू धर्म की असमानता और अन्याय पूर्ण व्यवस्था को बदलने का कोई ईमानदार प्रयास नहीं किया गया। इसके साथ ही धर्मान्तरण से भी दलितों को अन्याय और शोषण से मुक्ति नहीं मिल सकी। क्योंकि जाति—व्यवस्था पर आधारित ग्राम व्यवस्था ने इन्हें पुनः शूद्रों की कोटि में ही डालकर गाँव की सीमा से बाहर रखा और अपने शोषण के सिलसिले को भी बरकरार रखा।

'जूठन' आत्मकथा के लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि भी एक ऐसी ही शूद्र या दलित जाति (भंगी) से संबन्ध रखते हैं, जिसे शूद्रों में भी अति शूद्र या दलितों में अति—दलित माना जाता रहा है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के माध्यम से दलित जातियों के प्रतिनिधि कबीर ने हिंदू वर्ण—व्यवस्था और मुस्लिम स्तर भेद के लिए दोनों समुदायों को धिक्कारते—ललकारते हुए लिखा —

'जो तू बामन बामनि जाया। आन बाट हवै क्यों नहिं आया।'

'जो तू तुरुक तुरकनी जाया। अंदर खतना क्यों न कराया।'

मध्यकाल में संत नामदेव, रैदास, सधना, सेना नाई, रज्जब, गरीबदास, दादू जैसे प्रखर कवियों—संस्कृतिकर्मियों की एक पूरी जमात निर्गुण भक्तिधारा के रूप में प्रवाहित हुई थी, जिसकी तीखी धार को कुण्ठित कर हिंदू व्यवस्था ने अपने में समाहित कर लिया। लेकिन आज के वैज्ञानिक युग और लोकतांत्रिक व्यवस्था में साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय दलित आंदोलन की धार को कुण्ठित करना बहुत कठिन है। फिर भी इसे असंभव नहीं कहा जा सकता। इस व्यावसायिकता के युग में सवर्ण मानसिकता के सत्ताधारी समुदाय में लोभ—लाभ के बहुत सारे हथकण्डे हैं, जिनसे दलित वर्ग के प्रतिनिधि संस्कृति कार्मियों को पर्याप्त सावधान रहने की जरूरत है। परिवेशगत इस दबाव के कारण ही अतिरिक्त सावधानी के प्रयास में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा में कहीं—कहीं अधिक कटु होकर अपने मानवीय कर्म का ही संपादन करते हैं, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए उसका दुरुपयोग नहीं करते। इस आत्मकथा में व्यक्त तीखी प्रतिक्रियाओं को आपको इस आशय के प्रकाश में ही देखना चाहिए।

बोध प्रश्न

इकाई में दिए गए मूल पाठ, उसके सार, चरित्र—विश्लेषण, उसकी अंतर्वस्तु और उसके परिवेश का अध्ययन करने के बाद आप आत्मकथा से सम्बद्ध बहुत से प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। यहाँ कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं, जिनके उत्तर कोष्ठकों में उचित संख्या के निर्देश द्वारा दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

- 9) 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा में लेखक ने किस सामाजिक समस्या को सबसे महत्वपूर्ण माना है?
- क) शिक्षा की समस्या को।
ख) अस्पृश्यता की समस्या को।
ग) दहेज की समस्या को।
घ) गरीबी और बेरोजगारी की समस्या को। ()
- 10) लेखक ने अपने जातीय दृष्टिकोण द्वारा किस तथ्य को अधिक महत्वपूर्ण माना है?
- क) समन्वय की भावना को।
ख) अछूतों के प्रति सहानुभूति को।
ग) उदारता को।
घ) अपने व्यावहारिक लाभ को। ()
- 11) सवर्णों के उत्पीड़न से बचने के लिए दलित और अछूत जातियों ने कौन—सा रास्ता अपनाया?
- क) सामूहिक प्रतिकार का।
ख) सामूहिक धर्मांतरण का।
ग) अनुनय—विनय का।
घ) प्रशासन की सहायता का। ()

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

- 1) अम्बेडकर साहित्य को पढ़ने के बाद लेखक ने महात्मा गांधी के अछूतोद्धार के संदर्भ में अपनी क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उत्तर तीन पंक्तियों में दें और उसे इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

.....
.....
.....
.....

- 2) इस आत्मकथा की अंतर्वस्तु की मुख्य विशेषताओं को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....
.....
.....
.....
.....
.....

- 3) इकाई में दिए गए चरित्र-विश्लेषण के आधार पर लेखक के चरित्र की मूलभूत विशेषताओं को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

5.7 संरचना-शिल्प

साहित्य की एक विधा के रूप में आत्मकथा के संरचना-शिल्प का कलात्मक होना एक अनिवार्य शर्त है। लेकिन इस कलात्मकता की कोई एक निश्चित कसौटी नहीं है। इसे आप हरिशंकर परसाई और महादेवी के निबंधों के संरचना-शिल्प के अंतर को देखकर अच्छी तरह समझ गए होंगे। यहाँ हम एक दलित लेखक की आत्मकथा के संरचना-शिल्प पर विचार करने जा रहे हैं। आत्मकथा में साहित्यिक कलात्मकता जितनी आवश्यक है, उससे कहीं अधिक आवश्यक उसकी प्रामाणिकता है, जो पाठक को अपने सहीपन की प्रतीति भी कराए। इस तथ्य को ध्यान में रखकर हम इस आत्मकथा की भाषा शैली पर अलग-अलग विचार कर संरचना-शिल्प की विशेषताओं को आसानी से समझ सकते हैं।

5.7.1 भाषा

आत्मकथा की भाषा में भी वे सारी विशेषताएँ आ जाती हैं, जो कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विधाओं के लिए निर्धारित की गई हैं। परिवेश और वातावरण, पात्रानुकूलता, भावानुकूलता, विषयानुकूलता, पात्रों के संवाद आदि ऐसे तत्व हैं, जो आत्मकथा में भी उपेक्षणीय नहीं हैं। यह आत्मकथाकार पर निर्भर करता है कि वह भाषा के किस स्वरूप का कब और कैसे इस्तेमाल करे। यह भी संभव है कि आत्मकथा लेखक अपनी निश्चित और स्तरीय परिनिष्ठित भाषा का ही शुरु से अंत तक प्रयोग करे। लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भाषा के संबंध में वातावरण, परिवेश और पात्रानुकूलता के साथ ही अपनी निश्चित भाषा के भी कुशल प्रयोग का परिचय दिया है।

अपने गांव के वातावरण के चित्रण में वाल्मीकि ने घर (पुरुषों की बैठक और पशुशाला), तगा (त्यागी जाति), चूहड़ा (भंगी), बगड़ (बस्ती), जोहड़ी (बावड़ी) आदि ठेठ स्थानीय बोली के शब्दों का प्रयोग किया है। अपने बचपन से लेकर स्कूली जीवन के चित्रण में उन्होंने विभिन्न पात्रों के संवादों की भाषा को भी ज्यों-का-त्यों आंचलिक लहजे में प्रस्तुत किया है। गाँव के त्यागियों की प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए, त्यागियों की सामंती मानसिकता के चित्रण में लेखक ने उनके कथनों को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया है। 'कौवा बी (भी) कबी (कभी) हंस बण सके,' 'अरे! चूहड़े के जाकत (बच्चा, बेटा) कू (को) झाड़ू लगाणे कू कह दिया तो कोण सा जुल्म हो गया!' इससे ग्रामीण परिवेश और अभिजात मानसिकता - दोनों का समुचित प्रभावांकन हुआ है। इस तरह के कई प्रसंगों में लेखक ने बोली के स्थानीय रूप का अविकल प्रयोग कर स्थिति को जीवंत बनाया है। सुखदेव सिंह त्यागी और अपनी माँ के बीच होने वाली नौक-झोंक को लेखक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है - 'चौधरी जी, ईब (अब) तो सब खाणा खाके चले गए...म्हारे (हमारे) जाकतों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते (कर रहे थे)।' इस पर चौधरी की क्रूरता भरी वाणी है, 'टोकरा भर तो जूठन ले जा री है.....ऊप्पर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी।' यह सुनकर टोकरा बिखेरते हुए माँ का जवाब है, 'इसे ठाके (उठाकर) अपने घर में धर ले। कल तड़के बरातियों को नास्ते में खिला देणा।' भाषा के ऐसे प्रयोगों द्वारा लेखक ने यथार्थ को अधिक प्रामाणिक बनाने के कौशल का परिचय दिया है।

संवादों में स्थानीय रंगत के समावेश के साथ ही लेखक ने अछूत जातियों के रूढ़िवादी संस्कारों, दवा-दारु और उचित उपचार की जगह बीमारी में प्रेत-बाधा के ढोंग को उजागर करने के लिए झाड़ू-फूंक, टोने-टोटके, ताबीज, भभूत की निरर्थकता को सिद्ध करते हुए उनसे सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। भगत, पुच्छा, पौन, ओपरा (भूत की लपेट), बादी देवता आदि शब्द और इनसे सम्बद्ध मान्यताएँ अछूतों में ही अधिक प्रचलित थीं, जो अछूतों के जीवन को और पीछे घसीट रही थीं।

आत्मकथा में अन्य सामान्य प्रसंगों के वर्णन-विवरण, विवेचन-विश्लेषण में लेखक ने हिंदी की स्तरीय भाषा के मान्य शब्दों का ही प्रयोग किया है। सब मिलाकर इस आत्मकथा की भाषा प्रसंगानुकूल, अभिव्यक्ति के लिए सक्षम और प्रभावांकन के लिए अत्यंत उपयुक्त है।

5.7.2 शैली

आत्मकथा की अपेक्षाओं के अनुकूल 'जूठन' की शैली वर्णनात्मक ही है। स्थान-स्थान पर स्थितियों और घटनाओं का विवरण देते हुए आत्मकथा की शैली में चित्रात्मकता भी दिखाई देती है। गंभीर स्थितियों के वर्णन के बाद लेखक को कहीं-कहीं एक तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विवेचन-विश्लेषण का भी सहारा लेना पड़ता है। लेकिन इससे वर्णनात्मक शैली में किसी प्रकार का गुणात्मक अंतर नहीं आने पाया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा की वर्णनात्मक शैली को नीरस विवरणों से बचाने का हमेशा ध्यान रखा है। इसके लिए उन्होंने स्थान-स्थान पर संवादों की योजना करके उसे जीवंत और सरस बनाने का प्रयास किया है। आत्मकथा के आरंभिक अंश की भाषा पर विचार करते हुए संवादों की योजना से आने वाली जीवंतता पर हमने पर्याप्त चर्चा कर ली है। यहाँ आगे आने वाले कुछ संवादों की इस दृष्टि से चर्चा उचित जान पड़ती है। महाराष्ट्र के चन्द्रपुर में रहते हुए एक ब्राह्मण कुलकर्णी परिवार की लड़की सविता वाल्मीकि को ब्राह्मण समझकर प्रेम करने लगी थी। यहाँ लेखक और उसके बीच की वार्ता आत्मकथा में कहानी की सरसता का संचार करती है -

- लेखक - मेरे बारे में तुम्हारी क्या राय है?
- सविता - आई, बाबा तुम्हारी तारीफ करते हैं.....तुम्हें अच्छा मानते हैं।
- लेखक - मैंने तुम्हारी राय पूछी थी।
- सविता - अच्छे लगते हो। (उसने मेरी बाँह पर अपने शरीर का भार डाल दिया था)
- लेखक - अच्छा, यदि मैं एस.सी. (सेड्यूल कास्ट) हूँ...तो भी.....?
- सविता - तुम एस.सी. कैसे हो सकते हो?
- लेखक - क्यों? यदि हुआ तो?
- सविता - तुम ब्राह्मण हो?
- लेखक - यह तुमसे किसने कहा?
- सविता - बाबा ने।
- लेखक - गलत कहा.....मैं एस.सी. हूँ। मैंने उत्तर प्रदेश के चूहड़ा परिवार में जन्म लिया है।
- सविता - तुम झूठ बोल रहे ले।
- लेखक - नहीं, सवि.....यह सच है....जो तुम्हें जान लेना चाहिए।

इस वास्तविकता को जानकार 'वह रोने लगी। मेरा एस.सी. होना जैसे कोई अपराध था। वह काफी देर सुबकती रही। हमारे बीच अचानक फासला बढ़ गया था। हजारों साल की नफरत हमारे दिल में भर गई थी। एक झूठ को हमने संस्कृति मान लिया था।' यहाँ उद्धृत संवाद और इस प्रकार की टिप्पणी से आत्मकथा की शैली को रोचक, जीवंत और गंभीर बनाने का प्रयास किया गया है।

एक कुशल कहानीकार और कवि होने के नाते ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कई प्रकार से अपनी वर्णन-शैली को रोचक और गंभीर बनाया है। वर्णनों के बीच जगह-जगह पर

शिक्षकों की भूमिका, पाठ्यक्रमों की निरर्थकता, वर्ण-व्यवस्था की क्रूरता, तथाकथित समाज-सुधारकों और सत्ता हथियाने के चक्कर में पड़े नेताओं के हथकण्डों पर की गई लेखक की टिप्पणियाँ उसकी विश्लेषण-क्षमता को भी रेखांकित करती हैं। दलित जाति के तीव्र अहसास की पीड़ा उसे प्रायः भावुक बना देती हैं। जाति-व्यवस्था की विकृतियों और धर्मशास्त्रों द्वारा उनकी पुष्टि से खिन्न लेखक का आक्रोश वर्णनात्मक शैली की सीमा का उल्लंघन कर भावात्मकता में प्रवेश कर जाता है। इसके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा –

‘तरह-तरह के मिथक रचे गए – वीरता के, आदर्शों के, कुल मिलाकर क्या परिणाम निकले? पराजय, निराशा, निर्धनता, अज्ञानता, संकीर्णता, कूपमंडूकता, धार्मिक जड़ता, पुरोहितवाद के चंगुल में फँसा, कर्मकांड में उलझा समाज, जो टुकड़ों में बँटकर कभी यूनानियों से हारा, कभी शकों से। कभी हूणों से, कभी अफगानों से, कभी मुगलों, फ्रांसीसियों और अंगरेजों से हारा, फिर भी अपनी वीरता और महानता के नाम पर कमजोर और असहायों को पीटते रहे। घर जलाते रहे। औरतों को अपमानित कर उनकी इज्जत से खेलते रहे। आत्मश्लाघा में डूबकर सच्चाई से मुँह मोड़ लेना, इतिहास से सबक न लेना, आखिर किस राष्ट्र के निर्माण की कल्पना है।’ आक्रोश और भावावेश के नाम पर उपर्युक्त उद्धरण में व्यक्त सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता। इस तरह की भावात्मक शैली के माध्यम से वाल्मीकि ने अपने पाठकों को जाति-पाँत और छुआ-छूत के मुद्दों पर गंभीरता से सोचने के लिए विवश किया है। अपनी वर्णनात्मक शैली में इस प्रकार की भावोत्तेजक विधि का प्रयोग कर उन्होंने अपनी शैली को कलात्मक ही नहीं प्रभावोत्पादक भी बनाया है। अतः कलात्मकता और प्रभावोत्पादकता – दोनों ही दृष्टियों से इस आत्मकथा की शैली सार्थक और सफल मानी जा सकती है।

5.8 शीर्षक

आपने पिछली इकाइयों में कहानी और निबंध के अध्ययन में उनके शीर्षकों के महत्व को अच्छी तरह समझ लिया है। एक साहित्य-विधा के रूप में आत्मकथा के लिए भी शीर्षक का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस इकाई में भी हमने अंतर्वस्तु और सार का अध्ययन करते हुए इस रचना के शीर्षक के महत्व की ओर संकेत किया है। आगे आत्मकथा के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए भी इसके शीर्षक के महत्व को रेखांकित किया जाएगा।

इस रचना के लिए ‘जूठन’ शीर्षक की सार्थकता पर विचार करने के पूर्व भारतीय समाज की एक अत्यंत अमानवीय प्रथा का संक्षिप्त परिचय आपके लिए उपयोगी होगा। लगभग पूरे भारत में यह प्रथा रही है कि सवर्ण एवं सम्पन्न परिवारों द्वारा आयोजित उत्सवों, शादी विवाह, मृत्यु-भोज आदि के अवसरों पर आमंत्रित लोगों के खाने के बाद उनकी थाली या पत्तलों पर बची हुई जूठन को अछूतों को उनके द्वारा किए गए काम के मेहनताने के रूप में दिया जाता रहा है। उनके लिए शादी-विवाह का महत्व इस ‘जूठन’ (जूठे अन्न) की मात्रा पर निर्भर करता था। महीनों और कभी-कभी जीवन-पर्यन्त बेगार का उनके लिए यह तोहफा मान लिया गया था। इसका जिक्र बड़े विस्तार से लेखक ने आत्मकथा में किया है, ‘शादी ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे। बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में

डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे-खुचे टुकड़े, एक आधा मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी-बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी। जिस बारात की पत्तलों से जूठन कम उतरती थी कहा जाता था कि भुक्खड़ (भूखे) लोग आ गए हैं बारात में, जिन्हें कभी खाने को कुछ नहीं मिला। सारा चट कर गए। अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात से इतनी जूठन आई थी कि महीनों तक खाते रहे थे।' जूठन को सुखाकर किस प्रकार सुरक्षित किया जाता था और उसे गाढ़े समय में किस तरह भिगोकर उबाला जाता था – चटखारे लेकर खाया जाता था, इसका भी वर्णन लेखक ने किया है। जूठन एकत्र करने के प्रसंग में लेखक की माँ और चौधरी सुखदेव सिंह त्यागी के बीच हुई नौक-झोंक के बाद उसके परिवार से जूठन का सिलसिला खत्म हो गया था।

वैसे देखा जाए तो यही आधार है, जिससे आत्मकथा का शीर्षक 'जूठन' रखा गया है। लेकिन पूरी आत्मकथा को पढ़ने के बाद लगेगा कि यह शीर्षक अत्यंत व्यापक और सांकेतिक भी है। यह शीर्षक इस तथ्य को भी संकेतित करता है कि शूद्र समुदाय सवर्णों के लिए जूठन के समान था, हिंदू समाज की तलछट था, जिसे कूड़ा समझा जाता था। बेगार उनका धर्म मान लिया गया था और गाली-गलौज से लेकर घोर प्रताड़ना तक को उनका अधिकार।

उनका नाम लेकर पुकारने की जरूरत नहीं समझी जाती थी, जिसका जिक्र करते हुए लेखक ने लिखा है, 'उम्र में बड़ा हो तो' 'ओ चूहड़े; बराबर या उम्र में छोटा हो तो 'अबे चहड़े के' यही तरीका था सम्बोधन का। अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय बैल को छूना बुरा नहीं था लेकिन जब चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लगता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।' वस्तुतः ये सारे तथ्य जूठन शीर्षक द्वारा संकेतित हुए हैं। जूठन के प्रति समाज की यह मानसिकता लेखक को आत्मकथा के अंत तक झेलनी पड़ती है। अतः 'जूठन' शीर्षक इस आत्मकथा के लिए अत्यंत उपयुक्त और सार्थक है। यह शीर्षक आत्मकथा के प्रतिपाद्य को भी अत्यंत कलात्मक ढंग से संकेतित करता है। इसके साथ ही यह दलित समुदाय की अस्मिता या उसकी पहचान के संकट को भी रेखांकित करता है।

5.9 प्रतिपाद्य

कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि की तरह आत्मकथा का भी एक निश्चित उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य ही उसका प्रतिपाद्य माना गया है। यह बात अपनी जगह सही है कि इस रचना में लेखक की अपनी कथा है, जो स्वयं उसकी ही कलम से लिपिबद्ध हुई है। लेकिन इसे लेखक के जीवन का रोजनामचा मात्र नहीं कहा जा सकता। अपने पूरे जीवन के विस्तार में लेखक को जिन प्रिय-अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ा है, जिन व्यक्तियों, जिन घटनाओं ने उसे प्रभावित किया है, जिनके माध्यम से उसकी दृष्टि का निर्माण हुआ है, वे सभी आत्मकथा में आई हैं। अपने जीवन-यापन के दौरान होने वाले अनुभव, व्यक्तिगत और सामाजिक क्रियाएँ, उसकी मूल्य-दृष्टि का निर्माण करती हैं। यही वह मूल्य दृष्टि है, जिसके आधार पर वह अपना, अपने जैसे लोगों का और पूरे समाज का मूल्यांकन करता है। यह

मूल्यांकन—दृष्टि चूंकि पूरे सामाजिक संदर्भ में विकसित या अर्जित होती है, अतः इसे सामाजिक दृष्टि भी कहा जा सकता है। इस सामाजिक दृष्टि के प्रकाश में ही वह अपनी व्यक्ति स्थिति और समाज—स्थिति का निरीक्षण—परीक्षण करता है। इसके बाद ही उसका निजी जीवन आत्मकथा का विषय बन पाता है।

इस संदर्भ में विचार करें तो आप स्पष्ट रूप से देखेंगे कि इस आत्मकथा में लेखक के जीवन में उसके अछूत होने के सामाजिक अभिशाप की पीड़ा ही विषय बनी है। लेकिन मात्र अपनी निजी पीड़ा से अभिभूत होकर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उसे दूसरों के सामने प्रकट करने के उद्देश्य से आत्मकथा की रचना नहीं की है। यदि अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति को वे महत्व देते तो अपना सरनेम हटाकर उसे पूरा कर सकते थे और तब आत्मकथा लिखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। इस आत्मकथा के विस्तृत सार और उसकी अंतर्वस्तु के विवेचन—विश्लेषण से आपको इसके उद्देश्य का संकेत अवश्य मिल गया होगा। उसके आधार पर यह आसानी से कहा जा सकता है कि रचना का मूल और प्रथम प्रतिपाद्य भारतीय समाज के एक काफी बड़े समुदाय की, जिन्हें अछूत मान लिया गया है, मुक्ति का प्रयास है। इसके लिए लेखक ने अपनी आत्मकथा में जगह जगह जाति—पाँति पर आधारित समाज—व्यवस्था, उसके लिए जिम्मेदार वर्ण—व्यवस्था, आभिजात्यवादी सामंती मानसिकता आदि का तीव्र विरोध किया है। इस प्रक्रिया में उसने जाति—व्यवस्था के झूठ, उसकी कृत्रिमता और सवर्ण समुदाय के सचेत षडयंत्र का भी पर्दाफाश किया है। अपने व्यक्तिगत अनुभव के दंश से पीड़ित होकर उसने लिखा है, 'भारतीय समाज में 'जाति' एक महत्वपूर्ण घटक है। 'जाति' पैदा होते ही व्यक्ति की नियति तय कर देती है। पैदा होना व्यक्ति के अधिकार में नहीं होता। यदि होता तो मैं भंगी के घर पैदा क्यों होता? जो स्वयं को इस देश की महान सांस्कृतिक धरोहर का अलमबरदार कहते हैं क्या वे अपनी मर्जी से उन घरों में पैदा हुए हैं? हाँ, इसे जस्टी—फाई करने के लिए अनेक धर्मशास्त्रों का सहारा वे जरूर लेते हैं। वे धर्मशास्त्र, जो समता, स्वतंत्रता की हिमायत नहीं करते, बल्कि सामंती प्रवृत्तियों को स्थापित करते हैं।' इससे स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था की अतार्किकता, उसकी कृत्रिमता ही नहीं, उसे पुष्ट करने वाले धर्मशास्त्रों की निरर्थकता और अप्रासंगिकता को भी लेखक ने उद्घाटित किया है।

अपने मूल उद्देश्य के प्रतिपादन में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने केवल सवर्णों की सामंती मानसिकता पर ही चोट नहीं की है। उन्होंने अछूतों और नीची जातियों में प्रचलित अशिक्षाजन्य अंधविश्वास पर आधारित रूढ़ियों, कुसंस्कारों, झाड़—फूंक, टोना—टोटका, भूत—प्रेत आदि से संबद्ध मान्यताओं की आलोचना कर उनमें व्यापक जागृति की अनिवार्यता को भी रेखांकित किया है। यह उनके प्रतिपाद्य का एक दूसरा पक्ष है, जो अछूतोंद्वार के मार्ग में बाधक है।

इस दृष्टि से एक तीसरे पक्ष की ओर भी वाल्मीकि की दृष्टि गई है। अछूत कही जाने वाली जातियों में ऐसे बहुत सारे लोगों का उल्लेख वाल्मीकि ने किया है, जो पढ़—लिखकर अच्छी स्थिति में हो गए हैं और अपनी जाति पर परदा डालने की कोशिश करते हैं। इनमें उनके कई रिश्तेदार, उनकी भतीजी, हमसफर मित्र और मोहनदास नैमिशराय जैसे दलित कवि लेखक भी सम्मिलित हैं। इससे आहत होकर उन्होंने लिखा है, 'दलित आंदोलन से जुड़े रचनाकारों, बुद्धिजीवियों, कार्यकर्ताओं को अपने अंतर्द्वेष से लगातार जूझना पड़ रहा है।' इसका और अधिक खुलासा करते हुए उन्होंने लिखा है, 'इस 'सरनेम' (वाल्मीकि) के कारण मुझे जो दंश मिले हैं, उनको बयान करना कठिन है। परायों की बात तो छोड़िए, अपनों ने जो पीड़ा दी है, वह

अकथनीय है। परायों से लड़ना जितना आसान है, अपनों से लड़ना उतना ही दुष्कर। यह तथ्य भी अछूत अथवा दलित जीवन की समस्या की गंभीरता को ही रेखांकित करता है, जिसमें बेटा भी अपने बाप को पहचानने से इनकार कर सकता है।

इस प्रकार 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा दलित और अछूत समझी जाने वाली जातियों के एक प्रतिनिधि रचनाकार की आत्मकथा है, जिसमें अछूतों के उद्धार की आवश्यकता को एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर कोष्ठकों में संख्या निर्दिष्ट करके दें और उन्हें इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

12) गाँव के स्थानीय वातावरण को जीवंत और आदर्श बनाने के लिए आत्मकथा में किस प्रकार के शब्दों का सहारा लिया गया है?

क) तद्भव शब्दों का।

ख) बोली के ठेठ शब्दों का।

ग) देशज शब्दों का।

घ) तत्सम शब्दों का।

()

13) ग्रामीण पात्रों के संवादों में भाषा के किस रूप का प्रयोग किया गया है?

क) तद्भव-प्रधान रूप का।

ख) स्थानीय बोली के ठेठ रूप का।

ग) तत्सम प्रधान रूप का।

घ) मिश्रित भाषा का।

()

14) 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा में किस शैली की प्रधानता है?

क) भावात्मक शैली की।

ख) वर्णनात्मक शैली की।

ग) विवेचनात्मक शैली की।

घ) व्यंग्यात्मक शैली की।

()

15) आत्मकथा का मुख्य प्रतिपाद्य क्या है?

क) अपने जीवन में भोगी गई पीड़ा का बोध कराना।

ख) ग्रामीण जनता के पिछड़ेपन को दिखाना।

ग) देश-व्यापी अछूत समस्या की गंभीरता पर प्रकाश डालना।

घ) विभिन्न जातियों के बीच आपसी मेल-जोल की जरूरत पर बल देना।

()

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थानों में दें और उन्हें इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

- 4) 'जूठन' की भाषा की प्रमुख विशेषताओं को पाँच पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....
.....
.....
.....
.....

- 5) 'जूठन' की वर्णनात्मक शैली को लेखक ने किस प्रकार कलात्मक और प्रभावोत्पादक बनाया है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

.....
.....
.....
.....
.....

- 6) 'जूठन' शीर्षक की सार्थकता को चार पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....
.....
.....
.....
.....

- 7) 'जूठन' के प्रतिपाद्य को आठ पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

5.10 सारांश

आत्मकथा : जूठन
(ओमप्रकाश
वाल्मीकि)

‘जूठन’ शीर्षक आत्मकथा से संबंधित इस इकाई का अध्ययन आपने कर लिया होगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित तथ्यों को समझकर अपनी भाषा में लिख सकते हैं-

- एक साहित्यिक विधा के रूप में आप इस विधा की प्रमुख विशेषताओं को समझकर अपनी भाषा में लिख सकते हैं।
- इसमें आत्मकथा के सार और उसकी अंतर्वस्तु का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इसको पढ़ने के बाद आप आत्मकथाकार के जीवन के यातनापूर्ण प्रसंगों के माध्यम से दलित जीवन की वास्तविक पीड़ा को समझकर अपनी भाषा में व्यक्त कर सकते हैं।
- आत्मकथा में व्यक्त लेखक के चरित्र और व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकते हैं।
- इस इकाई में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिवेश पर विचार करते हुए जाति व्यवस्था के रूप में एक सामाजिक अभिशाप को भी रेखांकित किया गया है। छुआछूत की भावना पर आधारित इस अभिशाप की गंभीरता का आप विवेचन-विश्लेषण कर सकते हैं।
- भाषा और शैली को आधार बनाकर आत्मकथा के संरचना-शिल्प पर भी इसमें विचार किया गया है। इसे पढ़ने के बाद आप आत्मकथा के संरचना-शिल्प की विशेषताओं को अपनी भाषा में लिख सकते हैं।
- आत्मकथा का शीर्षक ‘जूठन’ कई दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसे पढ़ने के बाद आप इस रचना के संदर्भ में शीर्षक की सांकेतिकता, व्यापकता और सार्थकता पर अच्छी तरह प्रकाश डाल सकते हैं।
- आत्मकथा के रूप में यह रचना आत्मकथाकार के जीवन का रोजनामचा मात्र न होकर एक गंभीर सामाजिक लक्ष्य से भी प्रेरित है। अतः इसे पढ़कर आप रचना के मूल प्रतिपाद्य को अच्छी तरह अपनी भाषा में विवेचित-विश्लेषित कर सकते हैं।

5.11 शब्दावली

तगा	:	त्यागी (जातिसूचक)
घेर	:	पशुशाला और पुरुषों की बैठक
जोहड़ी	:	बावड़ी
चुहड़ों	:	भंगी (भंगियों)
बगड़	:	बस्ती
थारी	:	तुम्हारी
जागी	:	जाएगी
जातक	:	बच्चा, बेटा
कूबी	:	को भी

हिंदी साहित्य : विविध
विधाएँ

तुनकमिजाजी	:	छोटी-सी बात पर रुष्ट हो जाना
फक्तियाँ	:	ताने, छींटाकशी
अभिजात्यता	:	कुलीनता
वजूद	:	अस्तित्व
रा है	:	रहा है
शख्सियत	:	व्यक्तित्व
क	:	के लिए
कबी	:	कभी
कू	:	को
तरियों	:	तरह
तम	:	तुम
यो	:	वह
जिब	:	जब
म्हारे	:	मेरे, हमारे
हुज्जत	:	कहा-सुनी, नोक-झोंक
बुग्गी	:	गाड़ी
छाज	:	सूप
कुरडियों	:	घूरों, कूड़े के ढेरों
जनवासा	:	बारात के ठहरने का स्थान
ईब	:	अब
कर रे ते	:	कर रहे थे
री	:	रही
ठाके	:	उठाकर

5.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

श्री राज किशोर (सम्पादक) : हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

रमणिका गुप्ता (सम्पादक) : दलित चेतना : साहित्य, नवलेखन प्रकाशन, हजारीगा

डॉ. जयप्रकाश कर्दम (सम्पादक) : दलित साहित्य : (वार्षिकी), 2001, अकादमिकप्रतिक्षा प्रकाशन, दिल्ली

5.13 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

- 1) ग
- 2) ख
- 3) ख

- 4) मुसलमान, तगा, त्यागियों, हिंदुओं
- 5) ग
- 6) क
- 7) ग
- 8) झाड़ू छीनकर, उतर आई, तीर-कमान, घनी मूँछें, फड़फड़ाने लगीं
- 9) ख
- 10) ख
- 11) ख
- 12) ख
- 13) ख
- 14) ख
- 15) ग

अभ्यास

- 1) अम्बेडकर को पढ़ लेने के बाद लेखक की यह धारणा बनी थी कि गांधी जी ने हरिजन नाम देकर अछूतों को राष्ट्रीयधारा में नहीं जोड़ा, बल्कि हिंदुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाया। अपने इस कार्य द्वारा उन्होंने सवर्ण हिंदुओं के हितों की रक्षा की।
- 2) यह आत्मकथा लेखक की अपनी व्यथा-कथा मात्र न रहकर समस्त भारतीय अछूत जीवन की व्यथा-कथा भी बन जाती है। इस आत्मकथा में लेखक ने आरंभ से अन्त तक स्वयं के माध्यम से दलित जीवन की असहायता, विवशता और अनेक प्रकार के अत्याचारों के साथ सवर्णों या ऊँची जातियों द्वारा स्वीकृत वर्ण-व्यवस्था, ब्राह्मणवाद राजनीतिक व्यवस्था के सहारे पलने वाली सामंती मानसिकता पर अपना गहरा आक्रोश प्रकट किया है।
- 3) आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का चरित्र एक साहसी, कर्मठ, संघर्षशील और इनसानियत से भरपूर व्यक्ति के रूप में उभरा है। अनेक विषम और विरोधी परिस्थितियों में भी कभी उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी। जीवन की दौड़ में एक सफल व्यक्ति बन जाने के बाद भी उन्होंने अपने इनसानी सरोकार को कायम रखा। एक साहित्यकार ही नहीं, वरन् एक सांस्कृतिक-सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी उन्होंने अपनी संघर्षशीलता का परिचय दिया है। उच्च जातियों और निम्न जातियों के बीच चल रहे परोक्ष या प्रत्यक्ष संघर्ष में उसने निम्न जातियों के पक्ष में अपनी संघर्ष-क्षमता का पूरा परिचय देकर अपने प्रतिबद्ध व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है।
- 4) 'जूठन' में वातावरण, परिवेश और पात्रानुकूलता का पूरा ध्यान रखते हुए लेखक ने अपने वर्णनों-चित्रणों में अधिकांशतः खड़ी बोली गद्य के स्तरीय रूप का प्रयोग किया है। अपने गाँव के वातावरण को यथार्थ और जीवंत बनाने के लिए उसने तगा, बगड़, जोहड़ी आदि शब्दों के प्रयोग के साथ ही ग्रामीण पात्रों के संवादों की भाषा में गाँव की ठेठ (आंचलिक) बोली का प्रयोग किया है।

- 5) लेखक ने 'जूठन' की वर्णनात्मक शैली को नीरस विवरणों से बचाने के लिए जगह-जगह संवादों की योजना, गंभीर प्रसंगों में विवेचन-विश्लेषण और भावपूर्ण प्रसंगों में भावात्मक शैली का सहारा लिया है। इन विधियों से आत्मकथा की वर्णनात्मक शैली में कलात्मकता और प्रभावात्मकता का अत्यंत कुशलता से समावेश किया गया है।
- 6) आत्मकथा में 'जूठन' शीर्षक एक अमानवीय सामाजिक चलन और उससे जुड़ी हुई एक मार्मिक घटना पर आधारित है। लेकिन इस प्रचलन और घटना के साथ ही जूठन शीर्षक अछूत समुदाय की अपनी अस्मिता के संकट को भी रेखांकित करता है। अतः यह अत्यंत सार्थक और सांकेतिक भी है। इससे हाशिये पर डाली गयी जातियों का बोध भी होता है।
- 7) 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा का मूल प्रतिपाद्य भारतीय समाज में दलित या अछूत समुदाय के उत्पीड़न और इससे मुक्ति की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इसके लिए जहाँ एक ओर लेखक ने ब्राह्मणवादी सामंती मानसिकता का घोर विरोध किया है, वहीं अछूत समुदाय के अंधविश्वास, उसकी रूढ़िवादी और कुसंस्कारग्रस्तता की भी सहानुभूतिपूर्वक आलोचना की है। लेकिन सब मिलाकर अछूतों अथवा दलितों के लिए सामाजिक समता और न्याय की अनिवार्यता ही इस रचना का प्रमुख प्रतिपाद्य बनी है।